182
Mukta Sangit
566
566
M

मुक्त-संगीत

अभिराम शर्म्मा
प्रणयेश शर्म्मा

अ
ञ्च
ल

कविता और कहानी का समन्वय,
इस पुस्तक में देखिये ।

शीघ्र प्रकाशित होगी ।

मुक्त सङ्गीत

लेखक :-
अभिराम शर्मा।
प्रणयेश शर्मा।

1172
1021
137 P
566
M
MICROFILM

राष्ट्रीय अभिलेखागार पुस्तकालय
NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
भारत सरकार
Government of India
नई दिल्ली
New Delhi
1172
10/21
आह्वानांक Call No.
अवाप्ति सं० Acc. No. 566

-: अभिराम. पुस्तकमाला :-

(प्रथम छवि)

मुक्त-सङ्गीत

लेखक :—

अभिराम शर्मा ।
प्रणयेश शर्मा ।

अभिराम निवास, कानपुर ।

१)

प्रकाशक:—

रामसहाय पाण्डेय "चन्द्र"

कानपुर

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
NO 566
Date 14.12.71
GOVT. OF INDIA

मुद्रक:—

प्रयागनारायण कश्यप

विष्णु प्रयाग प्रेस, कानपुर।

प्रथमबार १०००

मिलने का पता:—

(१)

तिलक बुकडिपो

मेस्टन रोड, कानपुर।

(२)

श्री प्रकाश पुस्तकालय

चौक, कानपुर।

समर्पण

राष्ट्रपति पं० जवाहर लाल नेहरू

पूजनीय,

राष्ट्रपति !

पा न सके वे फूल खिले जो नन्दन बन में।
ला न सके वे भाव भरे जो भक्ति भुवन में॥
भरी हुई है साध किन्तु पूजन की मन में।
क्या न मिलेगा इष्ट देव इस आराधन में॥
सूखी कलियाँ तोड़ कर स्नेह सलिल सिंचन करें।
कब विकसित हों सुमन ये कब इनको अर्पण करें॥

भवदीयः—

अभिराम शर्मा

प्रणयेश शर्मा

भूमिका

हिन्दी में जातीयकविता या देश-सम्बन्धी पद्यों का प्रादुर्भाव हुए बहुत दिन हुए। यों तो कहने को चन्द, तुलसी और भूषण को भी खींच-तान कर जातीय कवि कहा जाता है; परन्तु, वास्तव में देश-सम्बन्धी कविताओं का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से होता है। भारतेन्दु जी के समकालीन पं० प्रतापनारायण जी मिश्र ने भी इस दिशा में बहुत काम किया था। किन्तु, इस क्षेत्र में वास्तविक उन्नति पूज्यपाद आचार्य्य पं० महावीर प्रसाद जी

द्विवेदी के प्रयत्नों से हुई। द्विवेदी-स्कूल के कवियों ने उस पौदे को जिसे भारतेन्दु जी ने अंकुरित किया था, ऐसे रस से सींचा कि आज उसकी मनोरम छटा हृदयों में घर किये हुए है। भारतेन्दु जी ने देश की दुर्दशा पर किस प्रकार आँसू बहाये हैं, वह उनके देश-दुर्दशा नाटक से देखियेः—

"रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हाहा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन-बल दीनो।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहिले जेहि रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्या-फल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हाहा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥"

उन दिनों देश में राजनैतिक जागृति का सूत्र-पात ही हुआ था, इस लिये कविता में भी देश की दीन दशा का चित्रण मात्र है। यह रंग बाबू मैथिली शरण गुप्त की "भारत-भारती" तक प्रवर्द्धित और परिमार्जित होता रहाः—

"वे भूरि संख्यक साधु जिनके पंथ भेद अनंत हैं।
अवधूत, यति, नागा, उदासी, संत और महंत हैं॥
पर वे गृहस्थों से अधिक हैं आज रागी दीखते।

अत्यल्प ही सच्चे विरागी और त्यागी दीखते॥
जो कामिनी-काञ्चन न छूटा फिर विराग रहा कहाँ।
पर, चिह्न तो वैराग के अब हैं जटाओं में यहाँ।
भूखों मरे कि जटा रखा कर साधु कहलाने लगे।
चिमटा लिया भस्मी रमाई मांगने खाने लगे॥
क्या भस्म लेपन से कहीं मन की मलिनता छूटती।
हाँ! साधु-मर्यादा हमारी अब दिनों दिन टूटती॥
संख्या अनुद्योगी जनों की ही न इससे बढ़ रही।
शुचि साधुता पर भी कुयश की कालिमा है चढ़ रही॥
यदि ये हमारे साधु ही कर्तव्य अपना पालते।
तो देश का बेड़ा कभी का पार ये कर डालते॥

—बा० मैथिलीशरण गुप्त

सन् १९०४ ई० में जब कि बंग-भंग के कारण स्वदेशी-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और देशात्मा कुछ उद्बुद्ध हुई, तो जैसा कि स्वभाविक था हिन्दी में भी देश-सम्बंधी कविता का प्रवाह प्रवल वेग से बहने लगा। इस अवसर पर पं० माधव शुक्ल की सजीव रचनाओं को किसी प्रकार नहीं भुलाया जा सकता। आपकी कविताओंमें राष्ट्रीयताका स्रोत अविरलरूपसे बहता नज़र आता है। आपकी भारतगीताञ्जलि के जोशीले गाने मुर्दा दिलों में जान डाल सकते हैं। अपनी पुस्तक के समर्पण में आप किस

मार्मिकता से लिखते हैं:—

जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय-पट पर,
जग-विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है निश्चल जिनमें,
केवल मातृ-भूमि—अनुराग॥
बँधी हुई मुट्ठी को जिनने,
अब तक नहीं पसारा है।
जिनको हाथों से पैरों का,
अधिक अँगूठा प्यारा है॥
उन्हीं अनूठे कानों में यह-
मेरी स्वर-मय आत्म-पुकार।
पहुँचे आत्म-लता की जड़ में,
जिसमें होय शक्ति संचार॥

—माधव शुक्ल

सन् १९२१ ई० के गत असहयोग-आन्दोलन के समय में जब कि विदेशी सरकार से प्रजा का संघर्ष ज़ोरों से चलने लगा, तब तो देश-सम्बन्धी कविता की बाढ़ ही आगई और उस में काफ़ी ज़ोर भी आगया। देखिये, उन दिनों शुक्ल जी ने कैसा बेढब कड़खा गाया था:—

निकल पड़ो अब बनकर सैनिक भंग करो फ़रमानों का।
बिन स्वराज्य के नहीं हटेंगे क़ौल रहे मरदानों का॥

× × ×

जेल-यातना हो, निर्दय दल करे गोलियों की बौछार।
ईश्वर का सुमिरन कर वीरो! सहते जाओ अत्याचार॥
कायर, कुटिल, निलज्ज देश के लखें दृश्य बलिदानों का।
बिन स्वराज्य के नहीं हटेंगे क़ौल रहे मरदानों का॥

× × ×

नर नारी बच्चों को गोरे अत्याचारी खूब हनें।
भारत के कोने-कोने में जलियांवाले बाग बनें॥
चिन्ता नहीं बहे लहराता चहुंदिशि खून जवानों का।
बिन स्वराज्य के नहीं हटेंगे क़ौल रहे मरदानों का॥

वर्तमान आन्दोलन में तो कदाचित् ही कोई अभागा कवि ऐसा बचा हो, जिसने अपने प्यारे देश पर श्रद्धा के फूल न चढ़ाये हों। श्री अभिराम और श्री प्रणयेश दोनों ही युवक कवियों ने भी सामयिक देश-प्रेम-सम्बंधी रचनाओं से अपनी वाणी को सार्थक किया, यह पुस्तक उसी का फल है।

इस पुस्तक के गीतों और कविताओं में कितनी वेदना, कितना अनुराग और कितना रस है, उसे पाठक स्वयं देखेंगे। इस स्थल पर इन युगल कवियों की दो एक तानें सुना कर ही हम इस संक्षिप्त भूमिका को समाप्त करेंगे।

देश में अशान्ति की ज्वाला धधक रही है। देश का

वीर सैनिक किस धैर्य्य से देश-प्रेम की अग्नि अपने हृदय में प्रज्वलित रखना चाहता है:—

हृदय में जलने दो— इस अशान्ति की आग !
हम बन्दी, नेता-गण बन्दी;
बन्दी भारत—देश।
बन्दी मानस ! विकल न होना-
परिमित है यह क्लेश।
अशन बसन धन-धाम हीन हैं—
पर्ण—कुटी आवास।
रुदन हमारा हाय ! हो रहा-
निष्ठुर का उपहास।
हृदय में जलने दो— इस अशान्ति की आग !
मनो-वेदना का उच्छृङ्खल,
उमड़ा उदधि अपार।
अब 'अभिराम' यही अवसर है-
चलो चलें उस पार।

एक क्रान्तिकारी कैसे वीरता पूर्ण उद्गार निकाल रहा है:—

सावधान मैं ! विप्लववादी !
मुझसे मत कुछ कहना।

अङ्गारों में झुलस जायगा,
भ्रान्त ! दूर ही रहना।
मुझे समझ तू परम प्रचण्ड, क्या जीवन देने आया है ?
मैं विकराल काल का दण्ड।
नर मुण्डों के कन्दुक लेकर-
जब मैं खेल रचाता।
शोणित-सरिता में हँस हँस कर,
मैं अविराम नहाता।
अखिल सृष्टि का मैं संहार समझूँ कौतुक क्रान्ति—
भयानक-पन मेरा शृङ्गार।
इसी लिये मैं रोक रहा हूं,
देना फिर न उलहना।
ओ अज्ञानी ! सोच समझ कर-
इन भावों में बहना।
श्वास, श्वास है झञ्झावात, प्रलयङ्करी सहचरी मेरी—
महाकाल की रात।
मैं अखण्ड हूँ ! मैं अजेय हूँ !!
मेरी गति मत गहना !!!
है 'प्रणयेश' निरङ्कुशता का-
कवच अनोखा पहना।

सत्याग्रह संग्राम में "वीर-गति प्राप्त करने वाले योद्धा की चिन्ता देख कर कवि श्मशान का कैसा भाव-मय चित्र खींचता है:—

देख रहा हूँ किस अतीत का,— यह विनष्ट शृङ्गार।
किस जीवन की नाट्य-थली का नीरव उपसंहार॥

यहाँ ध्वनित हो चुके न जाने,
कितने मादक राग?
कितने ही छुट चुके प्राण-धन-
कितने लुटे सुहाग।

× × ×

कण-कण में प्रत्यक्ष देखता—
सम्राटों के ताज।
कौन जानता है कल क्या थे,
और हुए क्या आज।

इस पुस्तक की कविताओं में देश-प्रेम की भावना तो है ही, साथ ही उन में काव्य-कला का कौशल भी पर्य्याप्त मात्रा में पाया जाता है। वे हृदय को पिघलाती और अलौकिक आनंद की झलक दिखाती हैं।

सुकवि कार्यालय, कानपुर।
२५–६–३१

—त्रिशूल

आत्म-निवेदन

युग परिवर्तन शील है, यह बात स्पष्ट है। युग बदलता है तो सबसे पहिले उसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। प्रत्येक देश की वास्तविक दशा जानने के लिये तत्कालीन साहित्य पढ़ना अत्यावश्यक है। जब हम महाकवि भूषण की कविता पढ़ते हैं तो, वीरवर शिवा जी के शासनकाल की प्रत्येक (सूक्ष्माति सूक्ष्म) घटना का परिज्ञान हो जाता है।

साहित्य क्या है? यों तो कविता, नाटक, उपन्यास, इतिहास और जीवन-चरित्र प्रभृति सभी मिल कर साहित्य के अन्तर्गत हैं। किन्तु, यदि किसी भाषा के साहित्य में पद्य भाग न हो तो वह भाषा कदापि साहित्य नहीं हो सकती। अतएव साहित्य का मुख्य भाग कविता ही है। यह कविता

क्या है और संगीत से उसका क्या सम्बन्ध है, यह बिषय विचारणीय है।

किसी आचार्य्य का मत है— 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात— जिस वाक्य में रस हो वही कविता है। इस कविता के मुख्य दो भेद हैं एक श्रव्य (जो सुना जा सके) और दूसरा दृश्य (जो देखा जा सके)। अस्तु—

संगीत मनुष्य के लिये स्वभाविक बस्तु है ठीक उसी प्रकार जैसे— पवन और जल। परस्पर बात चीत से मन का भाव व्यक्त किया जा सकता है किन्तु, स्वर के रूप में वह अधिक सुस्पष्ट हो जाता है। हा, यह शब्द दुख बोधक आश्चर्य और हर्ष में भी इसका प्रयोग किया जाता है किन्तु, उसी शब्द को स्वर-लहरी के साथ बोलने से सौ गुना दुःख, आश्चर्य और हर्ष प्रकट किया जासकता है। इसीस्वर वैचित्र्यको संगीत कहते हैं। और यही कारण है कि मनुष्य को संगीत प्रिय है और वह उसकी साधना में लीन रहता है।

जिस प्रकार अलंकार नायका भेद इत्यादि कविता के व्याकरण हैं उसी प्रकार ध्वनि और उसके अन्तर्गत समस्त राग-रागिनियों कासमूह मुक्तरूपसे कविताका व्यापक व्याकरण है। गीत के लिये वाक्य विन्यास करके देखा जाता है— अमुक रूप के आधीन अमुक राग है और उन्हीं नियमों के ज्ञान से

छन्दों की सृष्टि हुई है जैसे घनाक्षरी (दंडक) ध्रुवपद ताल में सर्वथा विहित है और बड़े बड़े गायकों द्वारा गाया जाता है।

गीत सुन्दर बनाने के लिये दो बातों की परमावश्यकता है। प्रथम तो कवित्व, दूसरा स्वर-लालित्य इन दोनों की अलग २ क्षमता होती है तभी तो कवि और साथ ही गायक होना दुर्लभ है। बिरले लोग ही कवि और गायक हैं। इसी लिये एक कविता रचता है तोदूसरा गाता है। गीत न होने से केवल कविता भी आनन्द-दायिनी है, इसी कारण संगीत का कविता से उतना ही सम्बन्ध है जितना अलंकारादि से। प्रायः सभी देशों में समयानुसार भक्ति, प्रेम और वीरता सूचक संगीत गाये जाते हैं, वीरता सूचक संगीत की सृष्टि मनुष्यों में उत्साह एवं जीवन भरने के लिये की जाती है। जैसे मृतप्राय रोगी को साध्य करने के लिये चतुर चिकित्सक रसों का सेवन कराते हैं ठीक उसी प्रकार एक जर्जरित देश के उत्थान के लिये सुन्दर संगीत का प्रचार ही श्रेयकर है। कबीर, दादू और गुरू नानक ने धार्मिक उत्थान के लिये एवं अपने अपने मत का प्रचार करने के लिये गीतों को ही प्रचार का साधन बनाया।

प्रस्तुत पुस्तक दो खण्डों में विभक्त की गई है। १

'गीत-खण्ड' २ 'कविता-खण्ड'। गीत-खण्ड में भिन्न भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत कुछ राग-रागिनियां हैं और कविता-खण्ड में विविध छन्द। यों तो सङ्गीत सागर अनेक राग-रागनियों की तरङ्ग मालाओं का भण्डार है किन्तु, फिर भी हम अपनी रुचि के अनुसार हिन्दी संसार के सामने कुछ थोड़ी सी रचनाओं का संग्रह लेकर उपस्थित होते हैं। यदि साहित्य महारथियों तथा संगीत के मर्मज्ञों ने इसको अपना कर हमें प्रोत्साहित किया तो शीघ्राति शीघ्र हम उन समस्त शेष रागनियों में भी लिखने का प्रयास करेंगे, जो अभी इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं हैं।

पुस्तक कैसी है? इसका प्रभाव कैसा पड़ेगा? यह तो ईश्वर ही जाने। किन्तु, हमने अपने प्रयास में कोई कसर नहीं रक्खी। अन्त में हम अपने उन कृपालु मित्रों के परम आभारी हैं जिन्होंने हमें अपनी अमूल्य सम्मतियाँ, समय तथा पुस्तक के प्रकाशन में यथेष्ट सहायता प्रदान की है। श्रीयुत बेनीप्रसाद जी अग्निहोत्री के परम कृतज्ञ हैं जिनकी कृपा से हमें टायटिल पेज़ का चित्र प्राप्त हुआ है।

अभिराम निवास,
कानपुर।

विनीतः—
अभिराम शर्मा
प्रणयेश शर्मा

वक्तव्य

अब वह समय आगया है जब प्रत्येक कवि देश की दुर्दशा का चित्र खींच कर सामने रखदे ! ऐसे चतुर चितेरों की ही आवश्यकता है। स्वागत ! वे आयें ! ऐसा वर्णन जिसे सुन कर पाषाण पिघल उठे— नव अचल चलायमान हो उठें— बस जग जाय, जीवन-ज्योति देश के कोने कोने में।

बहुत होचुका नायिका भेद ! सुनते सुनते शृङ्गार वंशी बहरे होगये कान ! बन्द करो यह बेसुरी तान ! वह तान—जो कर्कश होते हुए भी प्रिय लगे—वह राग जो तीव्रतम होतेहुए भी कोमल लगे, सुनाओ भूमण्डल के ओर छोर तक, जहां तक तुम्हारी कण्ठ-ध्वनि जा सके— बहाओ वह जीवन-उत्कर्ष की गंगा जिसमें तेतीस करोड़ एकदम शराबोर होजाँय !

साहित्य ऐसी-पुस्तकों की बाट जोरहा है ! देश की आँखें उतावली हैं– देखने को ! कान-व्याकुल हैं– सुनने को ! ऐसी ही पुस्तकें, ऐसेही गान। कवियो ! इस कण्टकाकीर्ण मार्ग में क्या अवतरित होगे ? यदि अब भी नहीं सुनाते तुम 'विप्लव गान' तो क्षमा करना,तुम वास्तविक कवि नहींहो। इस पुस्तक में पाठक गण अनेक त्रुटियाँ देखेंगे। क्षमा करेंगे मुझे अपना समझ कर। यदि यह पुस्तक अपने उद्देश्य की पूर्ति करनेमें सफल हुई तो हम अपने को कृतकार्य समझेंगे। मुझे जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है मैं स्वयं जानता हूँ, किन्तु मैं परम धन्य हो जाऊँगा-जब प्रत्येक-बच्चा बूढ़ा और जवान इस पुस्तकके गीतोंको गाताहुआ बलिबेदी-की- ओर अग्रसर होगा।

बन्दे !

—रामसहाय पाण्डेय "चन्द्र"

विषय--सूची

१—गीत–खण्ड ।

	शीर्षक	राग	पृष्ठ
१	मेरे गान	केदारा ध्रुवपद	१
२	आराधना	श्याम कल्याण	३
३	भारतगीत	देश	४
४	उस पार	जिला	५
५	प्राङ्गणकी ओर	खम्माच	६
६	ताण्डव	गूर्जरी	८
७	पागलपन	जोगिया	१०
८	अत्याचारी के प्रति-	आसावरी	११
९	कैसा जीवन ?	मेघ मल्लार	१२
१०	सत्याग्रही	सोरठ	१३
११	रण-निमन्त्रण	माँड	१४
१२	उद्बोधन	गुनकली	१५
१३	बन्दी की अभिलाषा	ललित	१६
१४	हृदयोद्गार	कान्हरा	१८
१५	मुक्त-गीत	झँझौटी	१९
१६	बन्धन	सहाना (दीपचन्दी)	२१
१७	फाँसी	पूर्वी	२२
१८	वीर-स्तवन	भूपाली	२४
१९	आत्म-शक्ति	धनाश्री	२५
२०	आह्वान	कामोद	२७

२१	हृदयकी हल चल	सारङ्ग	२९
२२	माताकी पुकार	कालिंगड़ा	३१
२३	प्रोत्साहन	भीमपलासी	३३
२४	झगडा-गायन	भैरवी दादरा	३४
२५	नईबात	बिहाग	३५

कविता-खण्ड ।

	शीर्षक	पृष्ठ
१	कवि के प्रति—	३७
२	जीवनाकांक्षा	३८
३	असमञ्जस	३९
४	परिचय	४०
५	मेरी भावना	४१
६	विदा	४२
७	संकल्प	४६
८	वलिदान	४८
९	पवनदूत	५१
१०	सन्देश	५६
११	पथिक के प्रति—	५९
१२	श्मशान	६१
१३	माँ !	६२
१४	मिलन	६४
१५	सान्त्वना	६७
१६	उत्सर्ग।	७१

गीत-खण्ड

मुक्त सङ्गीत

मेरे गान ।

—राग–केदारा ध्रुवपद—

गूँज उठें मेरे गान !

भारत के बच्चे-बच्चे में, भर दें भाव महान ।

अग्नि-मयी एक तान—
भूमि एक—आसमान;
व्याप्त जैसे पवमान,
कर दे विप्लव-विधान ।

गूँज उठें मेरे गान !

प्राची-दिशि की हिलोर—
पश्चिम का गहे छोर,
अन्य उभय दिशि की डोर-
खींचे ध्रुव तान-तान।

गूँज उठें मेरे गान!

सुख-दुख मानापमान-
सब में हो गति समान।
भीरु हृदय! सावधान!
देंगे यह अभय दान!

गूँज उठें मेरे गान!

अन्धकार, उपल-वृष्टि—
प्लावित हो सकल सृष्टि;
पावें वह दिव्य दृष्टि,
आवें 'अभिराम' ध्यान।

गूँज उठें मेरे गान!

———

आराधना ।

— राग–श्याम कल्याण —

मन में है रट देश नाम की।

सोते-जगते हृदय-मुकुर में,
चित्रित है छबि शस्य-श्याम की। मन में०–

यश-अमरत्व सहज करतल गत,
सिद्धि सकल सेवक सुदाम की। मन में०–

देश-धर्म हित की न समर्पित,
तो यह काया कौन काम की। मन में०–

नाच रही नयनों में निशि दिन,
नवल छटा नयनाभिराम की। मन में०–

———

भारत--गीत।

—राग–देश—

बहु बल धारे—देश हमारे।

गङ्ग-यमुन--जल-
अविरल निर्मल,

सुन्दर स्रोत सुधारे—देश हमारे।

अचल--हिमाञ्चल-
श्यामल--अञ्चल,

पुण्य-मयी बसुधारे—देश हमारे।

सेवक -- सागर,
सेवत सादर,

सिंह-संतरी द्वारे—देश हमारे।

खग गन, मृग गन,
हैं प्रमुदित मन,

जन 'अभिराम' सुखारे—देश हमारे।

उस पार ।

—राग–जिला—

उठ रही कैसी प्रबल हिलोर !

अरे अरे वह देखो ! देखो !! विकट क्रांति का छोर !

व्याप्त हो रही जगतीतल में,
सुनो भयानक शोर ।
प्रलय मचा देगी पल भर में,
ऐसी है घन—घोर ॥

बढ़ी बढ़ी जनु बड़वानल सी,
रक्त—पिपासा ज़ोर ।
आलिङ्गन करने को उत्सुक-
चली अनय की ओर ॥

उड़ा रही है सकल विश्व को,
लिए शक्ति की डोर ।
देख देख हँसने लगता है,
यह 'प्रणयेश' विभोर !

प्राङ्गण की ओर।

—राग-खम्माच—

गति मत रोको मेरी,
बजती है रणभेरी,
मचल रहा है मन—
रण करने को आज।

पहिन चुके केसरिया बाना,
ठान चुके सङ्गर में जाना;
साज भी चुके हैं हम—
युद्ध के बिकट साज!

अरि दल-बल बढ़ता आता है,
अनय-सिंधु चढ़ता जाता है;
दौड़ दानवों के बीच—
डालने हमें दो गाज!

मैं हूँ देश-प्रेम मतवाला,
पहिनूँगा मुण्डों की माला।
मैं तो हूँ हठीला, लाओ–
मुझको कँटीला ताज !

जब तक होती क्रान्ति नहीं है—
तब तक उर में शान्ति नहीं है,
क्योंकि जननी की मुझे—
अब रखनी है लाज।

लक्ष्य हमारा ध्रुव सा बनकर,
कहता है यह आवाहन कर;
'अभिराम' आओ! आओ!!
ले लो अपना स्वराज!

गति मत रोको मेरी,
बजती है रणभेरी—
मचल रहा है मन,
रण करने को आज।

———

ताण्डव।

—राग-गूर्जरी—

सावधान ! मैं बिप्लववादी !
मुझ से मत कुछ कहना।
अङ्गारों में झुलस जायगा,
भ्रान्त ! दूर ही रहना।

मुझे समझ तू परम प्रचण्ड, क्या जीवन देने आया है?
मैं बिकराल काल का दण्ड।

नर मुण्डों के कन्दुक लेकर,
जब मैं खेल रचाता।
श्रोणित-सरिता में हँस हँस कर,
मैं अविराम नहाता।

अखिल सृष्टि का मैं संहार, समझूँ कौतुक क्रान्ति—
भयानक-पन मेरा श्रृङ्गार।

इसी लिये मैं रोक रहा हूँ,
देना फिर न उलहना।
ओ अज्ञानी ! सोच समझ कर-
इन भावों में बहना।

श्वास-श्वास है झञ्झावात, प्रलयङ्करी सहचरी मेरी-

महाकाल की रात।

मैं अखण्ड हूँ ! मैं अजेय हूं !!
मेरी गति मत गहना !!!
है 'प्रणयेश' निरङ्कुशता का-
कवच अनोखा पहना।

सावधान ! मैं विप्लववादी !
मुझसे मत कुछ कहना।
अङ्गारों में झुलस जायगा-
भ्रान्त ! दूर ही रहना !

पागलपन ।

— राग—जोगिया —

जीवन-मुक्त हुआ उन्मादी ।

दे दे मुझे गरल की प्याली—
क्यों मेरी मदिरा ढुलकादी ?
अरे-अरे ! यह भीषण ज्वाला—
तूने कैसे कहाँ लगादी ?
आलिंगन करने आया था,
सत्वर किसने लगी बुझादी ?
मुझको देख देख हँसता है,
क्या तू समझ रहा बकवादी ?
इस प्रलाप के आत्म-ज्ञान से,
मैंने दुनिया नई बनादी ।
मेरे मन-मन्दिर में भावुक !
ऐसी भाव-छटा छहरादी ।
यह 'अभिराम' सुधा सी कैसी
तूने संजीवनी पिलादी !

अत्याचारी के प्रति।

—राग-आसावरी—

करले अत्याचार हठीले! इसका मोल चुकाना होगा।
रुधिर-तरङ्गों में न रुकेगा, तुझको भी बह जाना होगा॥
जिन्हें बाँध बन्दी करता है,
जिनके प्राणों को हरता है;
वही दिखा देंगे हम क्या हैं, देख; तुझे पछताना होगा!
दीप-शिखा हत्यारी! तूने—
कितने सरल पतिङ्गे भूने;
निकट अन्त, अनजान जान तू, मान, नहीं बुझ जाना होगा।
कानन में तू बीन बजाता,
मृदु-तानों से चित्त चुराता;
हम कुरङ्ग इसमें न फँसेंगे, अब यह जाल उठाना होगा।
निकल पड़े हम सब मिलजुल कर,
तू भी आज खेल ले खुल कर;
है 'प्रणयेश' अशेष संग में, तुझे लौट घर जाना होगा।

———

कैसा जीवन ?

—राग–मेघ मलार—

तुमको जीवन इतना प्यारा ?
सदियाँ परवशता में बीतीं,
पर का लिया सहारा।
स्वाभिमान खो कर बैठे हो,
क्या बल पौरुष हारा ?
कह दो अब अपनी ममता से-
"तज दे संग हमारा।"
अहा! बह रही कैसी अविरल–
सत्याग्रह की धारा !
इसमें ही इस क्षण-भंगुर का–
होने दो न उतारा।
अपनापन जब अपनाओगे,
पी कर अमृत—खारा।
वह जीवन ही जीवन होगा,
तब 'अभिराम' तुम्हारा॥
तुमको जीवन इतना प्यारा ?

———

सत्याग्रही ।

—राग-सोरठ—

जब ये सत्याग्रह-रण करते ।
सत्य व्रत प्रह्लाद भक्त के,— पथ पर सदा बिचरते ।
सदय हृदय रहते हैं निर्भय,
नहीं काल से डरते ।
अटल अहिंसा—आराधन का,
भाव लोक में भरते ॥
पीड़ित कहीं शत्रु भी देखें,
नयन अश्रु-जल ढरते !
कहाँ मारना सीखे बढ़ कर,
स्वयं सत्य पर मरते ॥
केवल आत्मिक बल के बल पर,
सबलों का मद हरते ।
बस 'प्रणयेश' इसी से बरबस,
बिजय-बधूटी बरते ॥
जब ये सत्याग्रह-रण करते ॥

रण-निमंत्रण।

—राग-माँड—

आमन्त्रण आया है वीरो ! साजो रण के साज।

सुना दिया है सेनापति ने-
रुचिकर सिंह निनाद।
चलो-चलो अब मर मिटने का,
लें संजीवन स्वाद॥

तैंतिस कोटि करों में फहरे,
अपना उच्च निशान।
स्वाभिमान से भरे हृदय हों—
गाते स्वागत—गान॥

सुर-सुन्दरियाँ माला ले ले—
आईं बैठ बिमान।
कब आयें अभिराम विजेता,
करलें कुछ सम्मान॥

उद्बोधन।

—राग-गुनकली—

जाग वीर! जाग जाग!!

आया प्रमुदित प्रभात, बीत गई काल रात,
विकसे जल जात तात, पीले प्रेम का पराग।
जाग वीर! जाग जाग!!

मेरी यह सीख मान, करदे अब घमासान।
या तो देश हो श्मशान, या तो मम खुलें भाग॥
जाग वीर! जाग जाग!!

गौरव गरिमा महान, भूल गया स्वाभिमान।
क्या है कुछ भी न ध्यान, जोड़ ऐक्य ताग ताग॥
जाग वीर! जाग जाग!!

रक्षक 'अभिराम' श्याम, करले निष्काम काम।
धूम मचे धाम-धाम, गा दे वह क्रान्ति राग॥
जाग वीर! जाग जाग!!

———

बन्दी की अभिलाषा।

—राग—ललित—

विभु ! यदि बन्धन मुक्त बनाते।

तो इस अन्धकार मय जग में, जीवन-ज्योति जगाते॥

जो बन्दी भारत के बेटे,
दीन-हीन कहलाते।
उन सुकुमार मलिन कुसुमों की
मानस-कली खिलाते॥

विभु ! यदि बन्धन मुक्त बनाते।

अतिशय क्लांत भ्रान्त पथिकोंको,
शीघ्र सुपथ पर लाते।
गत गौरव की, स्वाभिमान की-
उनको याद दिलाते।

बिभु ! यदि बन्धन मुक्त बनाते।

यही नहीं हम पुनः शान्ति-मय,
भीषण क्रान्ति मचाते।
जल, थल, नभ, पाताल-रसातल,
क्या— त्रैलोक्य कँपाते।

बिभु ! यदि बन्धन मुक्त बनाते।

अन्यायी निष्ठुर शासन का,
माया-जाल हटाते।
कर स्वतंत्र 'प्रणयेश' देश निज-
जननी के गुण गाते।

बिभु ! यदि बन्धन मुक्त बनाते।

हृदयोद्गार ।

—राग-कान्हरा—

मुझको देख देख मत रोना ।

मैं उस उपवन का प्रसून हूँ— जो है सुघर-सलोना ॥

मेरे अङ्गों—प्रत्यङ्गों में,
लगे न जादू टोना ।
यही जान कोमल किसलय ने,
दिया सुरक्षित कोना ॥

मलयानिल के मृदु झोंकों में,
मैंने सीखा सोना ।
मैं अजान कुछ नहीं ज्ञात था,
मेरा क्या है होना ॥

अरे ! अचानक यह निष्ठुरपन
वनमाली ! विष बोना ?
हमको तो 'अभिराम' श्रेय है,
अपना सब कुछ खोना ॥

———

मुक्त--गीत।

—राग–झँझौटी —

द्रुत गति ही जीवन की गति है।

हे उत्थान-पतन के सहचर, इसकी कहीं न यति है॥

कर्णधार बन कर आना वह,
क्या उसकी विस्मृति है?
बीच भँवर में छोड़ अरे! अब-
ऐसी यहां विरति है॥

* * *

हाँ, मैं समझा-समझ लिया—
कुछ तेरी यहां न क्षति है।

किन्तु नहीं ऐसा मत जाने,
यह भी महा कुमति है॥

* * *

सावधान! हो सम्हल-सम्हल!
तू तो नाविक-सन्तति है।
मुक्त-गीत गाता जाता है,
पर न मुक्ति सम्प्रति है॥

* * *

अच्छा बह जाने दे पागल!
रक्षक मायापति है।
तब 'प्रणयेश' करे क्या चिन्ता,
सब प्रकार ही धृति है॥

द्रुत गति ही जीवन की गति है।

———

बन्धन ।

—राग–सहाना दीपचन्दी—

झन झन खन खन मृदु मय स्वर में,
बन्धन क्या हम से कहते हो?
चिर परिचित से ज्ञात हो रहे,
फिर कठोर बन क्यों रहते हो।

तुम बन्धन बन जग में आये,
इन भावों में क्यों बहते हो।
जीवन-सङ्गी के प्रति निष्ठुर!
यह अपमान सदा सहते हो।

क्या वलिदान बताओ लोगे?
गर्व-वह्नि में क्यों दहते हो?
हमें मुक्त कर स्वयं मुक्त हो,
सुख 'अभिराम' न क्यों लहते हो।

———

फाँसी ।

—राग-पूर्वी—

बधिक ! तुम पहनाओ जयमाल ।

प्रमुदित मन जीवन से नाता,
तोड़ चुका इस काल ॥

अस्ताचल के श्याम शिखर पर,
छवि विहीन बेहाल ।

दिन-मणि देख रहा है मुझको,
अब दो फन्दा डाल॥

जिस पथ पर आरूढ़ हुआ मैं,
यद्यपि वह विकराल।

किन्तु इसी पथ पर चलने से,
मिलती बिजय विशाल॥

भूल गया था—भटक रहा था,
देख विश्व-भ्रमजाल।

नत मस्तक हो धूल धूसरित,
कर लूँ उन्नत भाल॥

चर्म चक्षु हैं बन्द—
देखता हृदय—हृदय की चाल।

पल पल पर 'प्रणयेश' सुन रहा,
सर्व नाश की ताल॥

———

वीर-स्तवन ।

—राग–भूपाली—

वीरो ! वीर-स्तवन करो ।

वीर भावनाओं से प्रति पल
भरा हृदय हो—वह गति अविरल
स्वाधीनता प्रेम उमड़ा कर
प्लावित करो उसी से भूतल ।

वीरोचित सम्मान तभी हो, जब यह भाव भरो ।

मातृ-भूमि पर बलि बलि जायें
उस पर शीश सहर्ष चढ़ायें
नश्वर तन का मोह छोड़ कर
हम वह आत्मापन अपनायें ।

यही आन हो वीर ! जननि के सारे दुःख हरो ।

वीरो ! वीर-स्तवन करो ।

———

आत्म-शक्ति।

—राग-धनाश्री—

हमें है अपने पर विश्वास।

विजय सदा सम्मुख रहती है मिलती बिना प्रयास ॥

पुहुमि पलट जाये पल भर में—
और गिरे आकाश।
कहीं भृकुटि चढ़ जाय भूल से
तो हो सृष्टि-विनाश।

कितने ही ब्रह्माण्ड बिगड़ते,—
बनते हैं प्रति श्वास।
ओ अज्ञानी ! सोच समझ कर,
कहना हमको दास॥

सौर-जगत हँसने लगता है,
सुन कर मेरा हास।
इङ्गित करते ही बुझ जाती-
रण-चण्डी की प्यास॥

उथल-पुथल विप्लव की हलचल,
करती जहां बिलास।
उस दिगन्त के उच्चासन पर,
है 'अभिराम' निवास॥

हमें है अपने पर बिश्वास।

आह्वान ।

—राग-कामोद—

सिंह-जननि दुष्ट दलनि ले त्रिशूल कर में ।

प्राची दिशि दिव्य ज्योति,
प्रकटित कर दे बिभूति ।
ऐरी वीर-प्रसूति—,
रिपुदल मति भरमे ।

सिंह-जननि दुष्ट-दलनि ले त्रिशूल कर में ।

जो हैं अति ही उदण्ड-
उनको दे कठिन दण्ड;
हो स्वतन्त्र भरत खण्ड,
अब तो विश्व भर में।

सिंह-जननि दुष्ट-दलनि ले त्रिशूल कर में।

सुनले मेरी पुकार,
आजा अम्बे उदार!
परवशता क्लेश भार;—
ऐसे अवसर में।

सिंह-जननि दुष्ट-दलनि ले त्रिशूल कर में।

गह तू 'प्रणयेश' हाथ
रह तू निज देश साथ;
उन्नत हो जिससे माथ,—
स्वत्व के समर में।

सिंह जननि दुष्ट दलनि ले त्रिशूल कर में।

हृदय की हलचल ।

—राग-सारंग—

हृदय में जलने दो— इस अशान्ति की आग !

हम बन्दी, नेता-गण बन्दी;
बन्दी भारत—देश ।
बन्दी मानस विकल न होना—
परिमित हैं यह क्लेश ।

× × ×

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
No 566
Date 14:12:71
GOVT. OF INDIA

अशन-बसन-धन-धाम-हीन है—
पर्ण—कुटी आवास।
रुदन हमारा हाय! हो रहा-
निष्ठुर का उपहास।

× × ×

बस इतना अपराध हमारा,
यही, देश—अनुराग।
किसको अपना देश न प्रिय है ?
कैसा उन्हें विराग ?

× × ×

मनो-वेदना का उच्छृङ्खल,
उमड़ा उदधि अपार।
अब 'अभिराम' यही अवसर है-
चलो चलें उस पार!

———

माता की पुकार।

—राग-कालिंगड़ा—

परतन्त्रता के पाश में माता अधीर है।
बढ़ कर छुड़ाये उसको कोई ऐसा वीर है?

क्यों मोह में पड़े हो,
न किञ्चित् विचार है।
क्या जानते नहीं हो,
ये नश्वर शरीर है॥

जीवन बिता रहे हो निर्बलों की भांति क्यों !
आरत विचर रहे हो न भारत को पीर है।

कांटे चुभें बदन में,
उन्हें फूल जान लो।
पहना करो प्रसन्न हो,
गहना जँजीर है।

खोदी कहां कृपान— कहां अस्त्र शस्त्र हैं।
तरकश में हाय ! क्या न बचा एक तीर है ?

निष्कर्ष सत्य झूठ का,
'प्रणयेश' क्या कहें ?
हो हंस-बंश देख लो,
क्या नीर-क्षीर है ?

परतन्त्रता के पाश में माता अधीर है।
बढ़ कर छुड़ाये उसको कोई ऐसा वीर है ?

प्रोत्साहन ।

—राग–भीमपलासी—

होना मत निराश हे भाई ।

सुलग रही है धीरे धीरे यह जो आग लगाई ॥

विश्व विकम्पित कर देने की,

तुम में है प्रभुताई ।

एक बार तो उथल-पुथल कर,

ले लो विमल बड़ाई ॥

गिरि टूटें अङ्गारे बरसें,

चले प्रलय-पुरवाई ।

उबल रहा जल बड़वानल हो,

थल प्रति थल कठिनाई ॥

मुँह न मोड़ना रण-प्राङ्गण से,

करना मृत्यु सगाई ।

अब 'अभिराम' काम कुछ करलो,

वह स्वतन्त्रता आई !

———

झण्डा गायन ।

—राग–भैरवी दादरा—

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे ।

श्वेत भविष्य रेख अति उज्वल,
शान्ति-सुधा शुभ-धारा लगे ।

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे ।

हरा हमारे हृदय-गगन का,
दीप्तमान ध्रुव-तारा लगे।

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे।

अरुण तरुण भारत का भूषण,
सब रङ्गों में न्यारा लगे।

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे।

तरल तरंगों में तरलित नित;
जीवन बरसन-हारा लगे।

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे।

कवि 'अभिराम' सफल नर तन का,
ये ही अनुपम द्वारा लगे।

हमें अपना तिरंगा प्यारा लगे।

नयी बात।

—राग-विहाग—

सुनो तो कहें एक बात नयी।

निपट निराश दास जग के हित, जीवन—मुक्ति मयी॥

सत्यासत्य समर में आये,
विजित और विजयी।
निबल होगया सबल सत्य से,
अबल हुआ अनयी॥

शत्रु भाव का लेश न मन में,
स्वत्व हेतु विनयी—
है 'अभिराम' अलौकिक क्षमता,
हिंसा भ्रान्ति गयी॥

सुनो तो कहें एक बात नयी।

कविता-खण्ड

कवि के प्रति।

हे कविराज !
विश्व-नाट्य-मन्दिर के नटवर—
अभिनव शोभा साज।
तुम्हारो मानस-बीचि-विलास।
चपल चपल सा मञ्जुल हास।
तुम्हारे भावों की झंकार।
व्यथित कर देती है संसार।

हे अभिराम !!
विश्व-प्रेम के पूर्ण पुजारी—
सकल कला के धाम।
जगा दो ऐसा नव जीवन।
उड़ चलें जिससे जड़ चेतन।
भावना भरित हो उठे मन।
तुम्हारी बीण-विनिन्दत-तान।
छिड़े फिर गूँजे हिन्दुस्तान।
हे छविधाम ! हे अभिराम !!

जीवनाकांक्षा ।

वह जीवन जिसमें रहता था,
कटि तूणीर कसा प्रति-क्षण;
वह जीवन जिसमें कर धन्वा,—
शर करता अरि-दल बेधन ।
वह जीवन जिसमें मिलता था,
रण-चण्डी का शुभ दर्शन;
वह जीवन जिसमें जीवन था,
जीवन का सुख आजीवन ॥

× × ×

देश धर्म पर मर मिटने का,
जिसमें था समुचित साधन ।
क्या 'प्रणयेश' न पुनः मिलेगा.
किस विधि करूँ समाराधन ?

———

असमंजस।

पागल कहती है जीवन-धन!
मुझको दुनिया सारी।
मैं पागल हूं या पागल है,
नीरस विश्व अनारी॥

हृदय-मुकुर प्रतिबिम्बित-
जब होता है मुख तेरा।
स्वतः नाच उठता है प्रियतम!
तब मयूर मन मेरा॥

पागलपन है यही—
धूलि के अगणित पुञ्ज लगाऊँ।
है प्रतीति 'अभिराम' कदाचित्,
श्री पद-रज पा जाऊँ॥

परिचय।

मेरी इस नौका को या तो,
लहरों में लहराने दो।
या भवँरों के भ्रमजालों में,
इसे रसातल जाने दो।
माना, सागर अति आतुर हो-
माँग रहा मेरा बलिदान।
यह भी सच झञ्झा के झौंके,
गाते उथल-पुथल के गान।

× × ×

पर नाविक तू मौन देखता--
जा सुख से मेरा संहार।
छोड़ मुझे अपने अभाग्य पर,
मत प्रयोग करना पतवार॥

मेरी भावना।

क्रान्ति! क्रान्ति! अयिक्रान्ति!
उपासक मैं तेरा बन जाऊँ।
अखिल-विश्व की मुई भावना,
तव बल से प्रकटाऊँ!
दुराचार अन्याय अनथ का,
नाम निशान मिटाऊँ।
फिर से प्रिय स्वदेश में सत्वर,
नव जीवन सरसाऊँ॥

× × ×

अभिलाषा है यही कि तेरी सत्ता पर देदूं जीवन।
हो अग्रसर समर-प्रांगण में, तोड़ूं माता का बन्धन॥

बिदा ।

चला वीर जब समर-भूमि को,
ममता बोली जाओ ।
किन्तु प्रेम की उस प्रतिमा से,
बिदा मांग तो आओ ॥

जो नव लतिका बड़े यत्न से,
तुमने थी प्रतिपाली ।
उसे सूख जाने दोगे क्या,
बिन जीवन बनमाली ?

माना सैनिक रण-प्राङ्गण को
तुम्हें शीघ्र है जाना।
यह भी माना पहिन चुके हो,
तुम केसरिया बाना।

कठिन कवच ने कोमल मन को,
क्या पत्थर कर डाला।
किसी दुःखिनी का निष्ठुर बन,
क्यों तुमने घर घाला।

हृदय-पटल पर लिख जाती है,
प्रति-क्षण विरह-कहानी।
ओ बेदर्द परन्तु न तूने,
पीर पराई जानी।

साध भरी अधखिली अभी है,
वह कलिका सुकुमारी।
मधुर मिलन की शुभ आशा में,
प्रमुदित मनमें भारी।

इस वियोग की तप्त वायु में,
क्या उसकी गति होगी।
तनिक सोच लो फिर न मिलेगा,
अवसर अरे वियोगी।

हृत्-तन्त्री के इन तारों में,
कभी हुई थी पीड़ा!
युग नयनों में थिरक थिरक कर,
वह करती थी क्रीड़ा।

पलक बन्द हो गई शिथिल थी,
कर्म-हीन यह काया।
सहसा सेनानी ने अपना,
व्यापक बिगुल बजाया।

वहीं हाँ वहीं— वीर भावना,
उत्तेजित हो बोली।
ओ विरक्त! अब लग जाने दे,
इस माया की होली।

इस असार संसार सिंधु से,
तुम्हें पार है जाना।
प्रबल तरङ्गों के झोकों से,
जीवन तरी बचाना।

फिर इन मिथ्या-व्यवहारों से,
जोड़ रहा क्यों नाता।
विजय खड़ी 'अभिराम' सामने,
क्यों न समर में जाता।

लो जाता हूं प्रिये ! मिलन का-
सुखमय साज सजाने।
आऊँगा सत्वर सँयोग की,
घड़ियाँ सफल बनाने॥

संकल्प।

सह नहीं सकते हैं अब अपमान हम।
मान पर हो जायँगे बलिदान हम ॥

यन्त्रणायें दे कठिन से भी कठिन,
कष्ट कारागार का हो रात दिन।
हाथ हथकड़ियां गले में तौक़ हो,
बेड़ियों का भी निराला शौक़ हो।

जिनकी झङ्कारों में गायें गान हम।
मान पर हो जायँगे बलिदान हम ॥

सूलियाँ जिसमें गड़ीं वह राह हो,
उसके चलने में हमें उत्साह हो।
तीक्ष्ण बाणों का बरसना हो वहीं,
याकि 'लाठी का धरसना' हो वहीं।

मार खाकर भी बढ़ें गतिवान हम।
मान पर हो जायँगे बलिदान हम ॥

मार की बौछार मत हलकी पड़े,
व्यर्थ तेरी नीति क्यों छलकी पड़े।
कुञ्जरों के झुण्ड भी बुलवा अरे,—
क्यों न वह आकर हमें कुचला करे!

देखना होंगे न किञ्चित् म्लान हम।
मान पर हो जायँगे बलिदान हम॥

प्राप्त कर लेंगे सुखद स्वाधीनता,
आप मिट जायेगी सारी हीनता—
और वह दुखदा हमारी दीनता,
कौन तुमसे है कहो क्या छीनता?

ले रहे अधिकार अपना जान हम।
मान पर हो जायँगे बलिदान हम॥

———

बलिदान।

बहुत खेल खेले जीवन में,
कोई खेल न भाया।
जैसा इन नयनों के आगे,
खेल अनोखा आया।

एक ओर अन्याय दमन की,
सैन्य खड़ी थी भारी।
और दूसरी ओर अहिंसा-
सत्य-प्रेम की पारी।

ले ले कर बलिदान—
आ रहे थे सैनिक मतवाले।
खुले हृदय पर सम्मुख ही,
सहते थे गोली भाले।

कितने ही चढ़ गये बावले,
बड़े शौक से सूली।
बिना अन्न जल मरे अनेकों,
टेक न अपनी भूली।

उधर प्रमोद-लीन थे जग के,
जब ये प्राणी सारे।
टूट टूट गिर रहे उधर थे,
राष्ट्र-गगन के तारे।

किसे ज्ञात है इन वलिदानों-
का विराग-मय लेखा।
किसकी करुणामय आंखों ने,
आत्म-त्याग यह देखा।

क्या इनके प्रिय प्राण नहीं थे,
इनको इतने प्यारे।
अपने पूज्य पिता माता के,
क्या ये थे न दुलारे।

ये भी दुनिया में आये थे,
सुख सेजों पर सोने।
यह भी खा सकते थे मृदु-मय,
मोदक भर-भर दोने।

इनके भी था हृदय—
हृदय में नव उमङ्ग अभिलाषा।
इन्हें ज्ञात थी मधुर मिलन की,
प्रेम मयी परिभाषा।

देश-दुर्दशा देख वीर ये,
व्यथित हृदय उठ धाये।
माता के चरणों में अपने,
जीवन-सुमन चढ़ाये।

नित्य नये उत्पात देश के,
वक्षस्थल पर होते।
और पड़े तुम हाय! बन्धुवर!
सुख की नींदें सोते।

क्यों न अन्त कर दो सत्ता का,
जीवन-ज्योति जगाओ।
फिर से नवजीवन प्रभात की,
सुरभि छटा छहराओ।

———

पवन दूत।

क्या कहते हो हृदय हीन हूं,
हृदय नहीं है मेरे ?
यहाँ हृदय-धन भूल रहे हो,
किन भावों के प्रेरे।

कलिका ने सन्देशा भेजा,
यह तो मैंने माना।
कह देना तुम आज सुमन को-
है कर्तव्य निभाना !

पवन ! कहां जाते हो सुन लो-
मेरी भी दो बातें।
और साथ ही साथ देख लो,
प्रति-द्वन्दी की घातें।

उजड़ रहा नन्दन-बन जैसा,
मेरा मृदु उपवन है।
उपल वृष्टि हो रही हाय !
यह कैसा घोर पतन है।

अब अलिवृन्द स्वतन्त्र यहां,
कब मधुर रागिनी गाता।
अनिल तुम्हारे मृदु झोकों से,
टूट रहा है नाता,

प्रकृति नटी की सुघर सृष्टि में,
हम स्वतन्त्र कहलाते।
किन्तु दानवों के द्वारा—
पद दलित बनाये जाते।

फिर फिर देखो अहो समीरण,
मायावी की माया।
छल प्रपञ्च का इसने आकर,
कैसा जाल बिछाया।

थली प्रति थली का जीवन-प्रद,
सूख रहा है पानी।
चिर संगी मेघों के होकर,
तुमने नीति न जानी।

तुम तो जा सकते हो जाओ,
कहो वेदना सारी।
देखें जाकर क्या करते हो,
आज तुम्हारी बारी।

यहां नहीं है उस निष्ठुर से,
हमें तनिक भी आशा।
किन्तु देखने को उत्सुक हैं,
यह निस्सार तमाशा।

क्यों समीर किस ओर बह रही,
तव विचार की धारा।
पूर्ण करो जाकर उसको ही,
जो विश्वास तुम्हारा।

किन्तु नहीं मेरे प्रतिनिधि हो,
इसे भूल मत जाना।
फिर कलङ्क की काली रेखा-
मुझको मत दिखलाना।

आशावादी पवन बेग से,
धाया मायापुर को।
बहुत सँभाला असमंजस से-
कम्पित अपने उर को।

किसका स्वागत ! कैसा स्वागत !!
कौन कहाँ से आया।
सोच गया तत्काल प्रभञ्जन !
मैंने धोखा खाया !

किन्तु धड़कता हृदय थाम कर,
अपने मन में ठानी।
एक बार तो कहूँ सुमन की,
जाकर करुण—कहानी।

बड़े यत्न से बड़ी देर तक,
बहुत कहा—समझाया।
किन्तु मदान्ध घनों के मन को,
नहीं जीतने पाया।

गर्वान्वित हो चला प्रभञ्जन !
अपनी शक्ति दिखाने।
बिघ्न घटा को हटा सत्य का-
शौर्य सूर्य प्रकटाने।

द्रवित हो उठे मेघ क्या करें,
लगे अश्रु-जल बरसाने।
बिखर रहे थे कुसुम-कुञ्ज में,
मोती के से दाने।

× × ×

बिजय कमलिनी खिली,
लगी है भ्रमर भीर मँडराने।
उदयाचल के उच्च सिखर पर,
लगी ध्वजा फहराने।

सन्देश ।

तिमिराच्छन्न नहीं रजनी अब,
है प्रभात लालिमा महान !
कर्म योग युग आया वीरो,
करलो अपना अभ्युत्थान ।

मोह-मयी मादक—मदिरा-सी,
सुनी सतत बंशी की तान ।
'मोहन' छेड़ रहा है सुनलो,
शंखनाद ! गीता का ज्ञान !

सत्यं शिवं सुन्दरम् रचना—
शान्ति अहिंसा परमो धर्म।
कार्य्य-शील हो समर क्षेत्र में,
समझा रहा उसी का मर्म।

सुनो सुनो वह क्या कहता है—
बिजयी हो कर आऊँगा।
अथवा शव होगा सागर में,
लौट न आश्रम जाऊँगा।

एक तपस्वी की वाणी का—
यह है विनय पूर्ण सद्भाव।
क्या न इसे पालन करने का—
कभी हुआ है मन में चाव?

दे आहुति स्वर्गीय सुखों की,
चला स्वत्व अपनाने को।
और तपोवन में बैठा है,
तप का तत्व बताने को।

पलट चुकी है जीवन-धारा,
काया से कुछ मोह नहीं।
अब न उसे संयोग किसी का-
होता कभी बिछोह नहीं।

जीवन-मरण सबल निर्बल का-
हानि-लाभ जय और अजय।
आध्यात्मिक अधिदैविक भौतिक,
क्या है बस केवल निश्चय।

यह विराग मय सात्विक गणना-
अनुपमेय है— अनुसन्धान।
उसी त्याग के महातत्व में,
तन, मन, धन, करदो बलिदान।

हाँ तो अब क्यों ठिठक रहे हो,
ध्येय सामने बढ़ जाओ।
या जीवन उत्सर्ग वहीं हो,
या फिर नव-जीवन लाओ।

पथिक के प्रति।

पथिक ! कंटकावलि निहार कर जब इतने हो रहे विकल !
उस दुर्गम पथ में बतलाओ तुम कैसे सकते हो चल ?
कहीं पार करने होंगे गिरिवर उपत्यका आदि सभी—
मरुस्थली के विजन खण्ड में, चलना होगा कभी-कभी।

वन्य जन्तुओं का वह वृन्द,
कब रहने देगा स्वच्छन्द !
नभ से जहां स्वाति सुख-कन्द;
उपल-वृष्टि करती पथ बन्द।

इन असह्य वारों के सम्मुख, रह न सके यदि कहीं अटल।
उस दुर्गम पथ में बतलाओ तुम कैसे सकते हो चल ?
घोर घने तमसावृत थल में, नहीं हिचकिचाना होगा।
जाना होगा तमोराशि को भेदन कर जाना होगा।

झञ्झानिल के झोंके झेल—
करते हुये मृत्यु से खेल।
उन वृक्षों से करना मेल—
जिनकी बेल बने सुख-बेल।

इससे चूके, निकट पड़ेगा जल-प्रवाह, यदि गये फिसल।
उस दुर्गम पथ में बतलाओ— तुम कैसे सकते हो चल ?
अरे ! भूल बैठे ऐसा— अपनेपन का भी ध्यान नहीं।
अथवा समझे अथक परिश्रम का होता अवसान नहीं ?

हुए इसी से भग्नोत्साह—
नहीं रही चलने की चाह ?
अथवा देख ग्रीष्म का दाह;
चलना सुन भरते हो आह।

चलो चलो है ध्येय चलो चलकर न किया यदि जन्म सफल।
उस दुर्गम पथ में बतलाओ-- तुम कैसे सकते हो चल ?
ठुकरा कर ऊँचे नीचे को समतलप्राय बना लेना।
साहस साथी अपना करके वह दृढ़ता अपना लेना !

थल में जल, जल में हो थल,
करना ऐसी उथल पुथल।
जिससे सब कंटक हों चूर्ण
और यात्रा हो सम्पूर्ण !

श्मशान।

देख रहा हूँ किस अतीत का,-- यह विनष्ट श्रृङ्गार।
किस जीवन की नाट्य थली का नीरव उपसंहार॥

यहां ध्वनित हो चुके न जाने,
कितने मादक राग?
कितने ही छुट चुके प्राण-धन-
कितने लुटे सुहाग।

सूनेपन में सिसक रहा है, यह असार संसार।
निष्फल सा प्रतीत होता है जगती का व्यापार॥

कण-कण में प्रत्यक्ष देखता—
सम्राटों के ताज।
कौन जानता है कल क्या थे,
और हुए क्या आज।

फूलों के मुख पर उड़ती है हाय निरन्तर धूल।
कितने ही सुकुमार भटक कर गये यहाँ पथ भूल॥

कुछ कहता है अन्तर-तम को–
वह जर्जर कङ्काल।
उस वैभव इस अधः पतन का-
टूटा—फूटा हाल।

नश्वरता को अंक लिये क्रीड़ा करता है काल।
बिछा हुआ है सकल सृष्टि में जिसका माया-जाल॥

होता है अवसान यहीं पर—
अहो! मान अपमान।
रोता है, मदान्ध निष्ठुर पन—
पाकर सात्विक ज्ञान।

मां !

श्री चरणों की धूलि कणों से,
विरचित है यह मेरा तन।
तेरे स्नेह-सलिल से सिञ्चित-
विकसित है 'अभिराम' सुमन।

कृपा-कोर की सुखद समीरण·
करती प्रति पल मन-रञ्जन,
करुण करों से तू करती है,
मेरा सदा सुख-स्पर्शन।

× × ×

यह वरदान मुझे दे जननी !
विचरूँ तेरा प्रेमी बन।
यही साध है पद पद्मों पर--
न्योछावर करदूं जीवन।

मिलन ।

निकल पड़े माता के आंसू—
निकल पड़े माई के लाल ।
अविकल हृदय मातृ-मन्दिर में,
बन्दनार्थ आये तत्काल ।

बढ़े वीर-वर समराङ्गण में,
सहते हुये कठिन आघात।
विचलित होना कौन जानता—
था, समझे थे सुख की बात।

अहोरात्रि करके अखंड वह-
स्वतंत्रता का आराधन।
पहुँच गये हैं वहां जहां से-
मिल सकता है जीवन-धन।

उस विषाद की धुंधली छाया,
में है विमल प्रकाश मिला;
अथक परिश्रम की सीमा में-
वह विराम-अवकाश मिला।

यद्यपि इष्ट न पाने पर यह,
भावुक हृदय निराश मिला।
तो भी शान्त, शान्ति-योगी के-
द्वारा परम सुपास मिला।

होली, होली किन्तु उसी की-
सुस्मृति आज मनायेंगे।
अहो भाग्य ! बिछुड़े हृदयों को,
फिर से हृदय लगायेंगे।

खुले खुले खुल गये, बन्द थे-
जो कपाट मतिहीनों के
जगे जगे जग गये भाग्य--
इस दीन देश में दीनों के।

विजय-पराजय-हीन मिला-
क्या ? 'दोनों को सम्मान मिला।'
कब—वसुन्धरा को जब पावन-
प्रेम-पूर्ण बलिदान मिला।

स्वर्ग अभी बनती है पृथ्वी,
शान्ति—रागिनी गाने दो।
'मोहन' को अनुराग भरी वह-
मुरली मधुर बजाने दो।

सान्त्वना।

छलक छलक कर रह जाते हैं,
वे तेरे आंसू दो चार।
ललक ललक कर रह जाते हैं,
माँ! तेरे बालक सुकुमार।

और वहीं— बस वहीं देखता—
तेरा करुणा-मय संसार।
मुक्त-बिन्दु में थे अनेक वे,
बिखरे से अपूर्ण उद्गार।

फिर सहसा अयि जननि! देखकर-
निष्ठुर दल का अत्याचार।
सुनती है न? मचा दुनियां में-
कितना व्यापक हाहाकार।

प्रकृति कर रही रुदन पतन का-
देख देख सामान सभी।
और अकारण हृदय-हीन का,
देखा अनय-विधान सभी।

युवक-हृदय था रुक न सका-
जी चाहा कुछ बलिदान करे।
सब कुछ तेरा है इस नाते ही—
तेरा सम्मान करे।

उबल पड़ा तेरे अञ्चल की-
छाया में यों म्लान रहूं।
गत गौरव की सुस्मृतियां हों-
जागृत, मैं हत-ज्ञान रहूं।

कितने ही नवयुवक लाड़ले—
रण-प्राङ्गण में आ आ कर।
धधक रही थी भीषण ज्वाला,
वीर वहीं पर जा जा कर।

झुलस रहे थे किन्तु, अन्त तक-
सत्यव्रती थे व्रत धारे।
अरि के कठिन प्रहारों को वे,
सह लेते थे मन मारे।

करुणाकर को नेक न भाया—
करुणा-प्लावित खेल अहो!
द्रवित किया कह उठा स्वयं ही–
"करलें आकर मेल कहो।"

सेनापति आदेश कर रहा,
कुछ दिन हूँ माँ! शान्त अभी।
कलियाँ खिलीं भ्रमर गुण गाते,
तू फिर भी है क्लान्त अभी।

जब तक तू स्वाधीन न होगी—
कहदे, कल है किसे कहां ?
अभी बहुत सम्भव है विप्लव-
होंगे जननी जहां तहां।

यह तेरे सपूत कब जननी !
पराधीन रहने आये।
इङ्गित करते ही भावों के—
सागर में बहने आये।

आने दे वह समय विश्व को-
अपनी शक्ति दिखायेंगे।
मत अधीर हो जननि ! कितुझको
बन्धन-मुक्त बनायेंगे।

कुसुमित होगा यह अवश्य बस-
वह साधन मिल जाने दे।
तब तक उजड़े इस उपवन में-
पिक को पञ्चम गाने दे।

———

उत्सर्ग ।

मधुकर यह तो हमें बतादो !
तुम्हें कहाँ है जाना ।
इस अनन्त पथ पर चलने से,
होगा कहीं ठिकाना ।

उड़े जा रहे किसे खोजने,
क्या मन में है ठानी।
रुको रुको, तो तुम्हें सुनायें,
दुख-मय एक कहानी।

किन्तु मधुप हो रहा व्यग्र था,
कलियों के दर्शन को।
इसी लिये वह सुन न सका,
इस भीषण परिवर्तन को।

मानस-पट पर खिंची हुई थी-
उपवन की हरियाली।
नाच रही थी युग नयनों में,
माधविका की डाली।

सोच रहा था विहगावलियां,
गाती होंगी गाने।
कुञ्ज द्वार पर आये होंगे—
अलिगण साज सजाने।

माधव-ऋतु की छटा—
छा रही होगी प्रति कण-कण में,
हरीतिमा, पीलिमा नाचती-
सङ्ग-सङ्ग क्षण-क्षण में।

इन भावों में भरा भ्रमर—
आया अपने उपवन को।
हृदय थाम रह गया देख कर,
इस विचित्र दर्शन को।

घूम रही थी उसके सम्मुख,
घटनाओं की माला।
धाँय धाँय जल रही वहां थी-
सर्वनाश की ज्वाला।

लता गई थी उजड़—
पता था नहीं मञ्जु कुञ्जों का।
आर्तनाद ही पर्यायी था—
मधुपों की गुञ्जों का।

उसी ओर बढ़ती जाती थी—
नाश–मयी वह ज्वाला।
सिसक रहा था जिधर—
वेदनाकुल भौंरा मतवाला।

झुलस गये थे पंख—
कुंडलित अग्नि-ज्वाल माला में।
चत्तु-वान हो अन्ध बना था,
विकट धूम्रशाला में।

विषधर की सी स्वास—
बह रही थी झञ्झा की धारा।
तप्त तरङ्गों में फिरता था,
इधर उधर वह मारा।

किसी भांति उस तमोराशि से,
व्याकुल जब वह आया।
मूर्छित होकर गिरा—
शून्य सा, ज्ञानध्यान बिसराया।

अवनी के विस्तीर्ण अङ्क में,
निशि का अञ्चल ताने।
स्वप्न देश में बिचर रहा था,
मधुकर कहां ! न जाने !!

स्वर्ण थाल में भर लाई थी-
उषा सुन्दरी मोती।
कलियों के कोमल मुख को-
थी सुधा विन्दु से धोती।

केशर चन्दन गन्ध आदि ले,
बन्दन—साज सवाँरे।
अभिनन्दन को उत्सुकता से,
आई कञ्चन—द्वारे।

सिंह—द्वार पर सहसा—
प्रियतम ! बनमाली जब आए।
किरणोत्सव में वहीं उषा ने,
मणि-मोती बिखराए।

कञ्चन के रथ पर शोभित हो-
इधर चले बनमाली।
उधर सञ्चरित हुई समीरण
डोली, डाली—डाली।

सुमन—सुमन हँस पड़े—
तितलियाँ प्रेम रंग भरती थीं।
चञ्चल गति से थिरक थिरक-
कर, वहाँ नृत्य करती थीं।

पञ्चम स्वर में कोयल बोली-
कुहू—कुहू अब बीती।
अन्धकार पर तेजराशि ने,
अपनी सत्ता जीती।

कोलाहल मच गया विश्व में,
मधुप चेतना जागी।
जागृत हुईं बिगत घटनायें,
उसने तन्द्रा त्यागी।

यद्यपि उपवन में प्रसून थे,
कलिका थीं सुकुमारी।
सौरभ था, परिमल-पराग था,
थीं गुलाब की क्यारी।

किन्तु दूसरों का वैभव यह,
उसे न किञ्चित भाया।
बार बार फिर वही हृदय में,
उजड़ा उपवन आया।

सजल चक्षु हो उठे,
भाव के अश्रु उमड़ कर आये।
किसी भाँति वेदना-वह्नि में,
अपने नयन सुखाये।

उरमें बिखरे से विरक्ति के,
कुछ विचार ज्यों आये।
तत्क्षण उसने उस निकुञ्ज की-
ओर पंख फैलाये!

× × ×

वहाँ देखने लगा जल रही-
थी अशान्ति की ज्वाला।
होने को उत्सर्ग हो रहा-
था भौंरा मतवाला।

करुण दृगों से भूमि--,
भूमि से, नभ की ओर निहारा।
पुनः अग्नि की ओर देख कर,
किया भाग्य निपटारा॥

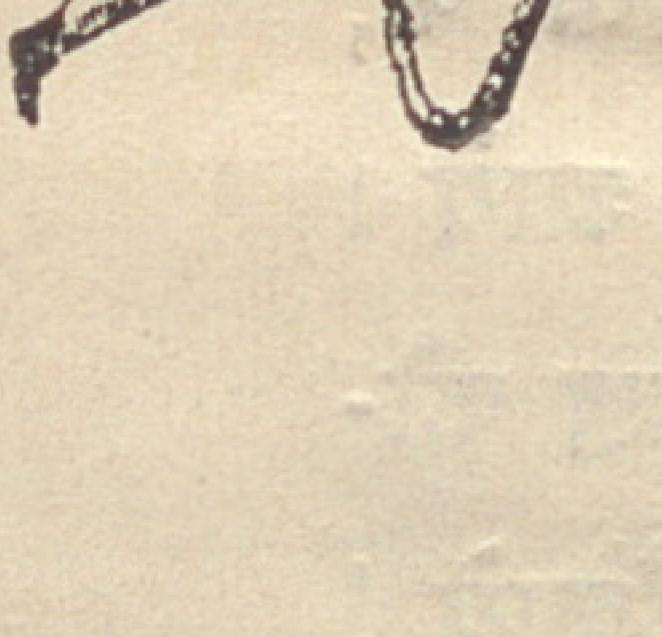

समाप्त

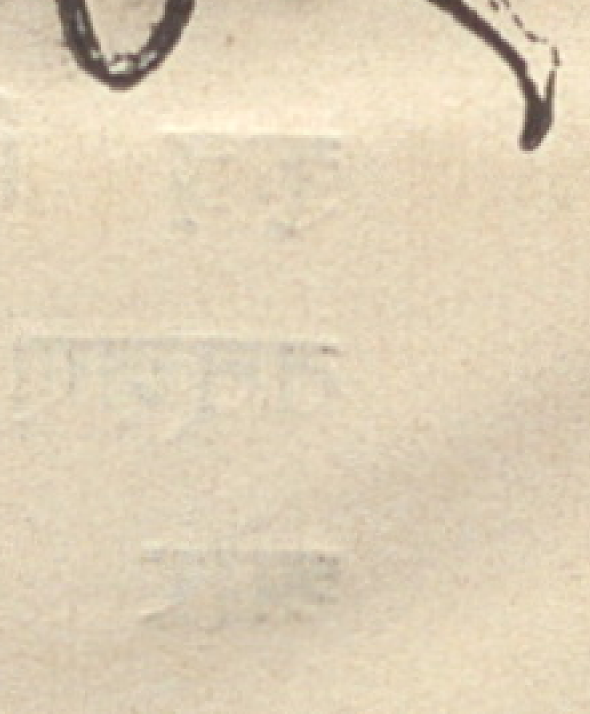

अभिराम पुस्तकमाला

निशीथिनी

(रचयिता– प्रणयेश शर्मा)

हिन्दी संसार में अभूतपूर्व मौलिक काव्य,— कला का दिग्दर्शन एवं कल्पना जगत का जीता जागता चित्र। यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी होगी।

समय की प्रतीक्षा कीजिए।

अभिराम पुस्तकमाला

अम्बर

लेखकः— अभिराम शर्मा
प्रणयेश शर्मा

सरस और सजीव कविताओं का अनूठा संग्रह।

शीघ्र प्रकाशित होगा।

प्रतीक्षा कीजिए ! प्रतीक्षा कीजिए !!

अ ञ्च ल

अ ञ्च ल

ले०— अभिराम शर्मा।

चित्रमय कविता एवं अभिराम कल्पना

शीघ्र प्रकाशित होगी।

विष्णु प्रयाग प्रेस, कानपुर।

नि
शी
थि
नी

हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा

खण्ड काव्य होगा।

सिर्फ़ रैपर सुकवि प्रेस फ़ीलख़ाना, कानपुर में मुद्रित।